प्रारंभिक रचनाएँ

तीन भागों में संपूर्ण—

पहले दो भागों में कविताएँ, तीसरे भाग में कहानियाँ

सन् १९२९—१९३३ में

लिखित

बच्चन की अन्य प्रकाशित रचनाएँ

१—सतरंगिनी

२—आकुल अंतर

३—एकांत संगीत

४—निशा निमंत्रण

५—मधुकलश

६—मधुबाला

७—मधुशाला

८—खैयाम की मधुशाला

९—प्रारंभिक रचनाएँ—दूसरा भाग [कविताएँ]

१०—प्रारंभिक रचनाएँ—तीसरा भाग [कहानियाँ]

इनके विषय में विशेष जानकारी के लिए पुस्तक के अंत में देखिए। नवीनतम रचनाओं के लिए लीडर प्रेस, प्रयाग से पत्र-व्यवहार कीजिए।

प्रारंभिक रचनाएँ

पहला भाग

(इस संग्रह की पहली अट्ठाइस कविताएँ पहले 'तेरा हार' के नाम से प्रकाशित हुई थीं)

बच्चन

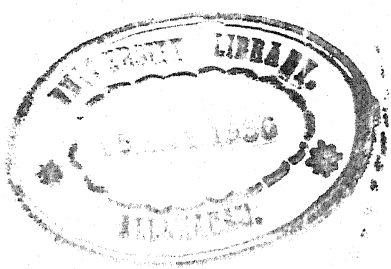

ग्रंथ-संख्या—१०४
प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भंडार
लीडर प्रेस,
इलाहाबाद

142164

इस पुस्तक की पहली अट्ठाइस कविताओं का संग्रह 'तेरा हार' के नाम से
सितंबर, १९३२ में रामनारायण लाल बुकसेलर, इलाहाबाद
द्वारा और सितंबर, १९३९ में सुषमा निकुंज, प्रयाग
द्वारा प्रकाशित हुआ था

वर्तमान स्वरूप में पुस्तक का
पहला संस्करण—अप्रैल, १९४३
दूसरा संस्करण—मार्च, १९४६
मूल्य १॥)

814-H
746

मुद्रक
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

विज्ञापन

आज 'प्रारंभिक रचनाएँ' प्रथम भाग का दूसरा संस्करण उपस्थित करते समय हमें बहुत प्रसन्नता हो रही है।

बच्चन की प्रारंभिक कविताओं का प्रथम संग्रह 'तेरा हार' के नाम से सन् १९३२ में प्रकाशित हुआ था। उनकी दूसरी प्रकाशित कृति 'मधुशाला' को देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ। उसका कारण था। दोनों के विचार, भाव, भाषा, कल्पना, शैली—सभी में भारी अंतर था। लोग सोचते थे कि 'तेरा हार' का लेखक 'मधुशाला' के गायक के रूप में कैसे अवतरित हो गया। उन्हें क्या पता था कि 'तेरा हार' के पश्चात और मधुशाला के पूर्व कवि 'तेरा हार' जैसे पाँच संग्रह तैयार कर चुका था। यही कारण था कि 'तेरा हार' का पाठक जब मधुशाला पढ़ना आरंभ करता था तो उसे दोनों के बीच एक बड़ी भरी खाई दिखाई पड़ती थी।

तीन वर्ष हुए बच्चन की समस्त प्रारंभिक रचनाओं को दो भागों में प्रकाशित करके हमने इसी खाई को भरने का काम किया था। बच्चन के नित नूतन कविता के पत्र-पुष्पों को देखकर उसके बीज को जानने और समझने की उत्सुकता उनके पाठकों में स्वाभाविक ही रही है। यही कारण है कि उनकी प्रारंभिक रचना 'तेरा हार' के दो संस्करण समाप्त हो चुके थे पर उसकी माँग फिर भी बनी हुई थी। 'तेरा हार' से लोगों की जिज्ञासा केवल अंशतः संतुष्ट होते देखकर हमने बच्चन की समस्त प्रारंभिक रचनाओं को प्रकाश में लाने की आयोजना की और संग्रह के प्रथम भाग में 'तेरा हार' को भी सम्मिलित कर लिया। वह अब स्वतंत्र रूप से नहीं छपता। पुस्तक का एक बड़ा संस्करण

तीन वर्षों के अंदर समाप्त कर पाठकों ने इसकी आवश्यकता और औचित्य को सिद्ध कर दिया है।

दूसरे भाग की सारी कविताएँ पहली बार प्रकाश में लाई गई थीं। वह भी समाप्त हो गया है और उसका भी नया संस्करण शीघ्र ही होने जा रहा है।

जहाँ तक संभव हो सका है कविताओं को रचना क्रम में रखने का प्रयत्न किया गया है। आशा है कवि के व्यक्तित्व और काव्य के विकास में रुचि रखनेवाले इस संग्रह से पर्याप्त लाभ उठा रहे हैं।

किसी कवि की नवीनतम रचनाएँ भले ही इस बात को बताएँ कि उसने अपनी कला में कितना ऊँचा स्थान प्राप्त किया है लेकिन यह उसकी पहली और प्रारंभिक रचनाएँ ही हैं जो यह बता सकेंगी कि कवि ने कहाँ से चलकर और किन प्रयत्नों द्वारा वह उच्चता प्राप्त की है। बच्चन की समस्त रचनाओ में जो उनके व्यक्तित्व की एकता है वह उनकी नवीनतम कृति को भी उनकी पहली रचना से संबद्ध करती है। हमारी यह धारणा है कि आप उनकी नई रचनाओं का पूर्ण आनंद तभी उठा सकेंगे जब आप उनकी प्रारंभिक रचनाओं से भी भिज्ञ हों।

एक शब्द हम काव्य पारखियों से भी कहना चाहेंगे। यदि यह कविताएँ समय से प्रकाशित होतीं तो उनकी विशेषताओं पर दृष्टि जानी चाहिए थी। आज इन्हें खोजने का समय नहीं है। आज तो उनकी संभावनाओं को देखना चाहिए। कवि की नवीनतम कृतियों को दृष्टि में रखते हुए इनकी संभावनाओं पर किसी को संदेह न होगा। हमें पूर्ण विश्वास है कि रचनाक्रम में इन्हें देखनेवाले इनसे किसी तरह निराश न होंगे।

इस नवीन संस्करण के साथ हम बच्चन के पाठकों को एक शुभ सूचना भी देना चाहते हैं। जैसा कि इस पुस्तक के मुख पृष्ठ पर ही संकेत किया गया है 'प्रारंभिक रचनाएँ' के पूर्व दो भागों के साथ हमने एक तीसरा भाग भी जोड़ दिया है और इस तीसरे भाग में होंगी बच्चन की कहानियाँ। यह कहानियाँ भी प्रायशः उसी काल की रचनाएँ हैं जिस काल की कि 'प्रारंभिक रचनाएँ' की कविताएँ। इसीलिए हमने इनको इसी नाम से प्रकाशित करना उचित समझा है। 'सुषमा निकुंज' द्वारा इन्हीं कहानियों को 'हृदय की आँखें' के नाम से प्रकाशित करने का विज्ञापन कई वर्ष हुए किया गया था, पर वह किन्हीं कारणों से कार्य रूप में परिणत न हुआ। इस प्रकाशन से बच्चन-साहित्य में जो नवीन वृद्धि हुई है, आशा है, वह उनके पाठकों को रुचिकर सिद्ध होगी।

—प्रकाशक

समर्पण

प्रिय श्रीकृष्ण और चंद्रमुखी को

सूची

विषय				पृष्ठ
१—मंगलारंभ	...	...	...	१७
२—संबोधन	...	...	...	१८
३—स्वीकृत	...	...	...	१९
४—आशे !	...	...	...	२०
५—नैराश्य	...	...	...	२१
६—कीर	...	...	...	२२
७—झंडा	...	...	...	२३
८—बंदी	...	...	...	२३
९—बंदी मित्र	...	...	...	२४
१०—कोयल	...	...	...	२५
११—मध्याह्न	...	...	...	२९
१२—चुंबन	...	...	...	३२
१३—मधुकर	...	...	...	३४
१४—दुख में	...	...	...	३९
१५—दुखों का स्वागत	...	...	...	४०
१६—आदर्श प्रेम	...	...	...	४१

विषय				पृष्ठ
१७—तुमसे	...	...	...	४२
१८—मधुर स्मृति	...	...	...	४३
१९—दुखिया का प्यार	...	...	...	४४
२०—कलियों से	...	...	...	४५
२१—विरह-विषाद	...	...	...	४७
२२—मूक प्रेम	...	...	...	४८
२३—उपहार	...	...	...	४९
२४—मेरा धर्म	...	...	...	५०
२५—संकोच	...	...	...	५४
२६—प्रेम का आरंभ	...	...	...	५५
२७—आत्म संदेह	...	...	...	५६
२८—जन्म-दिवस	...	...	...	६४
२९—बाँसुरी	...	...	...	६४
३०—चित्र-समर्पण	...	...	...	६५
३१—रिहाई	...	...	...	६६
३२—हेम की मृत्यु	...	...	...	६७
३३—पत्रोत्तर	...	...	...	६८
३४—गुदगुदी	...	...	...	७०
३५—सजीव कविता	...	...	...	७७

विषय				पृष्ठ
३६—पागल	...	...	...	७८
३७—तितली	...	...	...	८१
३८—प्रेम	...	...	...	८६
३९—झूला	...	...	...	८७
४०—काव्य अप्रकाशन	...	...	...	९५
४१—अरमान	...	...	...	१०१
४२—बाहु पाश	...	...	...	१०२
४३—ईश्वर और प्रेम	...	...	...	१०३
४४—रक्षाबंधन	...	...	...	१०९
४५—जेल में रक्षाबंधन	...	...	...	११३
४६—तेरा प्यार	...	...	...	११६
४७—कलंक	...	...	...	११६
४८—मृत्यु	...	...	...	१२०
४९—आत्मदीप	...	...	...	१२५

प्रारंभिक रचनाएँ

पहला भाग

मंगलारंभ

प्रियतम, मैंने बनने को तेरी सुंदर ग्रीवा का हार,
ललित बहिन-सी कलियाँ छोड़ीं,
भाई-से पल्लव सुकुमार,
साथ-खेलते फूल, खेलती-
साथ तितलियाँ विविध प्रकार,
गोद-खेलाते हुए पिता-से
पौधे का मृदु स्नेह अपार,
मातृ-सी प्यारी क्यारी का
सहज सलोना, सरल दुलार,
बाल्य-सुलभ-चांचल्य चपलता
छोड़ी, बँधी नियम के तार,
छोड़ा निज क्रीड़ा-शुभस्थली
शुभ्र वाटिका का घर-द्वार;
प्रियतम, बतला दे आकर्षक है क्यों इतना तेरा प्यार!

संबोधन

बुलाऊँ क्यों मैं तुम्हें पुकार,
जान ले क्यों सारा संसार,
तुम्हें इन कलियों का मधु वास
खींच लाएगा मेरे पास।

रहें हम-तुम जब केवल साथ
पिन्हा दूँ हार तुम्हें चुपचाप,
न पाए हम दोनों का प्यार
कभी शंकालु विश्व में व्याप।

तुम्हारी ग्रीवा में सुकुमार,
सुशोभित हो यह मेरा हार;
खिले कलियों-सा मन सुकुमार
हमारा तुम्हें निहार-निहार!

स्वीकृत

घर से यह सोच उठी थी
उपहार उन्हें मैं दूँगी,
करके प्रसन्न मन उनका
उनके शुभ आशिष लूँगी।

पर जब उनकी वह प्रतिभा
नयनों से देखी जाकर,
तब छिपा लिया अंचल में
उपहार - हार सकुचाकर।

मैले कपड़ों के भीतर
तंडुल जिसने पहचाने,
वह हार छिपाया मेरा
रहता कब तक अनजाने?

मैं लज्जित-मूक खड़ी थी,
प्रभु ने मुसकरा बुलाया,
फिर खड़े सामने मेरे
होकर निज शीश झुकाया!

आशे !

भूल तब जाता दुःख अनंत,
निराशा-पतझड़ का हो अंत
हृदय में छाता पुनः वसंत,

दमक उठता मेरा मुख म्लान,
देवि, जब करता तेरा ध्यान।

पथिक जो बैठा हिम्मत हार,
जिसे लगता था जीवन भार,
कमर कसता होता तैयार,

पुनः उठता करता प्रस्थान,
देवि, जब करता तेरा ध्यान।

डूबते पा जाता आधार,
सरस होता जीवन निस्सार,
सारमय फिर होता संसार,

सरल हो जाते कार्य महान,
देवि, जब करता तेरा ध्यान।

शक्ति का फिर होता संचार,
सूझ पड़ता फिर कुछ-कुछ पार,
हाथ में फिर लेता पतवार,

पुनः खेता जीवन-जलयान,
देवि, जब करता तेरा ध्यान।

नैराश्य

निशा व्यतीत हो चुकी कब की!
सूर्य-किरण कब फूटी!
चहल-पहल हो उठी जगत में,
नींद न तेरी टूटी!

उठा-उठाकर हार गई मैं,
आँख न तूने खोली,
क्या तेरे जीवन-अभिनय की
सारी लीला हो ली?

जीवन का तो चिह्न यही है
सोकर फिर जग जाना,
क्या अनंत निद्रा में सोना
नहीं मृत्यु का आना?

तुझे न उठता देख मुझे है
बार-बार भ्रम होता—
क्या मैं कोई मृत शरीर को
समझ रही हूँ सोता!

कीर

'कीर, तू क्यों बैठा मन मार,
शोक बनकर साकार,
शिथिल-तन मग्न-विचार!
आकर तुझपर टूट पड़ा है किस चिंता का भार?'

इसे सुन पक्षी पंख पसार,
तीलियों पर पर मार
हार बैठा लाचार;
पिंजड़े के तारों से निकली मानो यह झंकार—

'कहाँ वन-वन स्वच्छंद विहार!
कहाँ बंदीगृह द्वार!'
महा यह अत्याचार—
एक दूसरे का ले लेना जन्मसिद्ध अधिकार।

झंडा

हृदय हमारा करके गद्‌गद
भाव अनेक उठाता है,
उच्च हमारा होकर झंडा
जब फर-फर फहराता है।

अहे, नहीं फहराता झंडा
वायु-वेग से चंचल हो,
हमें बुलाती है मा भारत
हिला-हिलाकर अंचल को।

आओ युवको, चलें सुनें क्या
माता हमसे कहती आज,
हाथ हमारे है रखना मा
भारत के अंचल की लाज।

बंदी

'पड़े बंदी क्यों कारागार,
चले तुम कौन कुचाल,
चुराया किसका माल,
छीना क्या किसका जिसपर था तुम्हें नहीं अधिकार?'

न था मन में कोई कुविचार,
न थी दौलत की चाह,
न थी धन की परवाह;
था अपराध हमारा केवल किया देश को प्यार!

शीश पर मातृभूमि-ऋण-भार,
उसे हूँ रहा उतार;
देश हित कारागार
कारागार नहीं, वह तो है स्वतंत्रता का द्वार!

बंदी मित्र

जेल-कोठरी के में द्वार
बंदी, तुझसे मिलने आया,
नतमस्तक मन में शरमाया,
मित्र, मित्रता का मुझसे कुछ निभ न सका व्यवहार।

कैसे आता तेरे साथ,
देश-भक्ति करने का अवसर,
बड़े भाग्य से मिले मित्रवर!
मेरी क़िस्मत में वह कैसे लिखते विधि के हाथ।

मित्र, तुम्हारे मंगल भाल
अंकित है स्वतंत्र नित रहना,
मेरे, बंदी-गृह-दुख सहना,
'मैं स्वतंत्र, तू बंदी कैसे ?'—तेरा ठीक सवाल।

मित्र, नहीं क्या यह अविवाद,
स्वतंत्र ही स्वतंत्रता खोता,
बंदी कभी न बंदी होता,
अपने को बंदी कर सकते जो स्वतंत्र-आज़ाद।

कम न देश का मुझको प्यार।
साथ तुम्हारा मैं भी देता,
अंग-अंग यदि जकड़ न लेता
मेरा, प्यारे मित्र, जगत का काला कारागार।

कोयल

अहे, कोयल की पहली कूक!
अचानक उसका पड़ना बोल,
हृदय में मधुरस देना घोल,
श्रवणों का उत्सुक होना, बनना जिह्वा का मूक।

कूक, कोयल, या कोई मंत्र,
फूँक जो तू आमोद-प्रमोद,
भरेगी वसुंधरा की गोद?
काया-कल्प-क्रिया करने का ज्ञात तुझे क्या तंत्र?

बदल अब प्रकृति पुराना ठाट
करेगी नया-नया शृंगार,
सजाकर निज तन विविध प्रकार,
देखेगी ऋतुपति-प्रियतम के शुभागमन की बाट।

करेगा आकर मंद समीर
बाल-पल्लव-अधरों से बात,
ढकेंगी तरुवर गण के गात,
नई पत्तियाँ पहना उनको हरी सुकोमल चीर।

बसंती, पीले, नीले, लाल,
बैंगनी आदि रंग के फूल,
फूलकर गुच्छ-गुच्छ में झूल,
झूमेंगे तरुवर शाखा में वायु-हिंडोले डाल।

मक्खियाँ कृपण होंगी मग्न

माँग सुमनों से रस का दान,
सुना उनको निज गुन-गुन गान,
मधु-संचय करने में होंगी तन-मन से संलग्न !

नयन खोले सर कमल समान

वनी-वन का देखेंगे रूप—
युगल जोड़ी की सुछवि अनूप;
उन कंजों पर होंगे भ्रमरों के नर्तन गुंजान।

बहेगा सरिता में जल श्वेत,

समुज्ज्वल दर्पण के अनुरूप,
देखकर जिसमें अपना रूप,
पीत कुसुम की चादर ओढ़ेंगे सरसों के खेत।

कुसुम-दल से पराग को छीन,

चुरा खिलती कलियों की गंध,
कराएगा उनका गँठबंध,
पवन-पुरोहित गंध सुरज से रज सुगंध से भीन।

फिरेंगे पशु जोड़े ले संग,

संग अज-शावक, बाल-कुरंग,
फड़कते हैं जिनके प्रत्यंग,
पर्वत की चट्टानों पर कुदकेंगे भरे उमंग।

पक्षियों के सुन राग-कलाप—

प्राकृतिक नाद, ग्राम, सुर, ताल,
शुष्क पड़ जाएँगे तत्काल,
गंधर्वों के वाद्य-यंत्र किन्नर के मधुर अलाप।

इंद्र अपना इंद्रासन त्याग,

अखाड़े अपने करके बंद,
परम उत्सुक मन दौड़ अमंद,
खोलेगा सुनने को नंदन-द्वार भूमि का राग!

करेंगी मत्त मयूरी नृत्य

अन्य विहगों का सुनकर गान,
देख यह सुरपति लेगा मान,
परियों के नर्तन हैं केवल आडंबर के कृत्य!

अहे, फिर 'कुऊ' पूर्ण-आवेश !

सुनाकर तू ऋतुपति-संदेश,
लगी दिखलाने उसका वेश,
क्षणिक कल्पने मुझे घुमाए तूने कितने देश !

कोकिले, पर यह तेरा राग
हमारे नग्न-बुभुक्षित देश
के लिए लाया क्या संदेश ?
साथ प्रकृति के बदलेगा इस दीन देश का भाग ?

मध्याह्न

सुना था मैंने प्रातःकाल,
हुआ जब रजनी का अवसान,
लगे जब होने उडुगण म्लान,
हिलमिल पक्षीगण का गाना बैठ वृक्ष की डाल—

शारिका, श्यामा, तोते, लाल
आदि के कोमल विविध प्रकार
स्वरों का मधुर चढ़ाव-उतार,
सब के ऊपर कुहुक-कुहुक कोयल का देना ताल !

अहे, वह सुखद प्रभाती गान,
लगीं तप्त किरणें जब आने,
लगा पवन जब धूलि उड़ाने,
मध्य दिवस में, हाय, हाय, हो गया कहाँ लयमान !

ले गया राग-पुंज हर कौन,
किसके मन में पाप समाया,
किसे न औरों का सुख भाया,
बिठा दिया रागिनी प्रकृति को किसने करके मौन !

प्रकृति, तुम्हारे भी आनंद
क्षणिक मनुष्यों के-से होते ?
पल में आते, पल में खोते ?
कर्म-चक्र में मानव आते,
गाकर रोते, रोकर गाते।
रच न सका क्या चतुरानन दुख
से असम्मिलित तेरा भी सुख ?
रचा गया क्या हम दोनों के लिए एक ही फंद ?

अरे, न मेरा ऐसा ध्यान—

अब भी है हो रहा उसी लय
से वह गान, मुझे है निश्चय।
हुआ करेगा एक समान
संध्या तक यह मधुमय गान,
पक्षीगण जब स्वयं थकित हो
यह विचारते जाएँगे सो—
उठकर प्रातःकाल कौन हम छेड़ें नूतन तान।

और, नींद में स्वप्न अनेक

देखेंगे ऐसे—है लोक
एक, नहीं है जिसमें शोक,
मृदुल समीर जहाँ बहता है,
सदा वसंत बना रहता है,
घाम न होता, रात न आती,
जहाँ सदा ही संध्या छाती,
भूख जहाँ पर नहीं सताती,
प्यास नहीं है लगने पाती,
जहाँ न मृत्यु-जन्म का नाम,
जहाँ नहीं जीवन-संग्राम,

जहाँ न कोई करता द्वेष,
जहाँ नहीं भय का लवलेश,
अगणित खग सर्वदा चहकते,
कंठ नहीं पर उनके थकते,
उत्कंठित स्वर से है गाना जहाँ काम बस एक!

सुनूँ न फिर मैं क्यों कलरोर?
आह! भेद मैंने अब पाया—
बहरा अपना कान बनाया
भय अशांतिमय मचा-मचाकर हमने ही तो शोर!

चुंबन

ऐ छोटे विहंग सुकुमार!
तेरे कोमल चंचु-अधर से
निकल रहे स्नेहाप्लुत स्वर से
लगता, कोई करे किसी को निर्भय चुंबन-प्यार!

किसको करते चुंबन-प्यार?
क्या मानव आँखों से देखी
गई न बुद्धि-चक्षु अवरेखी
उसको, ऊषा काल बहे जो शीतल-मंद बयार?

या सुमनों में शिशु सुकुमार,

जो सुगंध का अब तक सोया,
रजनी के स्वप्नों में खोया,
उसे जगाते धीमे-धीमे करके चुंबन-प्यार?

या तुम शशि-किरणों के तार

से जो हाथ उन्हें चुम्बन कर
और सितारों का प्रकाश वर
चूम-चूम सस्नेह विदा करते हो, अंतिम बार?

या तुम बाल सूर्य के हाथ,

स्वर्ण-रंग में गए रँगाए,
गए तुम्हारी ओर बढ़ाए,
करते हो आभूषित अपने रजत-चुंबनों साथ?

या तुम उस चुंबन का, तात,

पाठ याद करते उठ भोर,
जिसे लिटा अंचल-पर-छोर
अपने तुमको, मातृ-विहंगिनि ने सिखलाया रात?

या तुम वह चुंबन प्रति भोर

उठकर याद किया करते हो,
(मुझे बताते क्यों डरते हो!)
जिससे तुम्हें किसी ने भेजा जीवन के इस ओर?

तब की तो है मुझे न याद,

पर अतीत जीवन के चुंबन
कितने चमका करें हृद्गगन,
जिनकी मूकस्मृति मेरे मन भरती मधुर विषाद!

यदि न जगत के धंधे-फंद

होते, मानस-गगन घूमता,
प्रति चुंबन को पुनः चूमता,
सदा बना मैं तुझ-सा रहता एक विहग स्वच्छंद!

मधुकर

उमड़-घुमड़ काले-काले
बादल का नभ में घिर आना,
रिमझिम रिमझिम करके अवनी-
तल पर पानी बरसाना।

सिमिट - सिमिटकर एक
सरोवर में जल का जा भरजाना,
मंद पवन के झोंकों से
लहरों का उसपर लहराना।

कंज-कली का झाँक - झाँक
जल के बाहर, भीतर जाना,
किसी व्यक्ति को देख न बाहर,
सहसा सिर ऊपर लाना।

लोक लाज के कारण मुँह पर
डाल हरा घूँघट आना,
चपल तरंगों की संगति से
पर उच्छृंखल बन जाना।

घूँघट हटा देख सर-दर्पण
में मुख अपना मुसकाना,
सूर्य देव का उसके अधरों
तक अपना कर फैलाना।

मंद समीरण का आ-आकर
मीठे धक्के दे जाना,
विहँसित होना कंज कली का
फूली-फूली न समाना।

करने को रस पान कली का
तब फिर मधुकर का आना,
छूते ही रस की मदिरा
उसका मतवाला हो जाना।

दिन भर मँडरा-मँडरा रस
पीना, पी-पी रस मँडराना,
जब हो जाना थकित शांत हो
कली-अंक में सो जाना।

आँख ऊपरी मुँद जाना
भावना नयन का खुल जाना,
स्वप्न देव का उसपर
स्वप्नों का बुनना ताना-बाना।

सकल विश्व का पिघल-पिघलकर
एक सरोवर बन जाना,
जग का सब सौंदर्य सिमटकर
कली - रूप उसपर आना !

सब कलियों के मन का मिलकर
एक सुमधुकर हो जाना,
इस सर-कलिका की सुषमा का
गुन-गुन करके गुण गाना !

मधुकर का यह गान श्रवण कर
बार - बार पुलकित होना,
तन की सुधि रस से खोई थी
मन की सुधि स्वर से खोना ।

संध्या का होना रवि का
अस्ताचल को जा छिप जाना,
कमल दलों को सकुचित करने
वाली रजनी का आना ।

कोमल कमल दलों में दबना
मधुकर का कोमलतम तन,
दुसह वेदना सह उसका
करना समाप्त प्यारा जीवन।

सुखमय दृश्य दिखाकर उसका
अंत दुःखमय दिखलाना।
मधुकर के जीवन हरने का
सब सामान किया जाना!

इसी लिए सौंदर्य देखकर
शंका यह उठती तत्काल—
कहीं फँसाने को तो मेरे
नहीं बिछाया जाता जाल?

ऐसी शंकाओं में फँसता
है क्यों? बतला, मानव मंद!
हर सुंदरता में तुझको
अनुभव करना था परमानंद।

सुख-दुख क्या है ? हृदय-भावना
जिसने है जैसा माना,
मधुकर ने अपने मरने को
था अनंत सुखमय जाना !

दुख में

'पड़ी दुखों की तुझपर मार !
दुःखों में सुख भरा जान तू,
रो-रोकर मुख न कर म्लान तू,
हँस, हँस, हलका हो जाएगा तेरे दुख का भार।

निज बल पर जिनको अभिमान
संकट में साहस दिखलाते,
दुःखों को हैं दूर हटाते;
दुख पड़ने पर जो हँसते हैं वही वीर-बलवान'।

'मिले मुझे दुख लाखों बार,
पर, दुख में सुख सार समाया—
व्यंग, समझ मैं कभी न पाया।
सुख में हँसूँ, दुखों में रोऊँ—सीधा-सा व्यवहार।

कोमल से कोमल भी शूल
जब-जब है तन मेरे गड़ता,
बच्चों-सा मैं हूँ रो पड़ता;
काँटों को मैं कभी न अब तक समझ सका हूँ फूल।

एक नियम जीवन में पाल
रहा सदा से हूँ मैं अविचल,
कोई कहे बली या निर्बल,
उन्हें चुभा रहने देता हूँ, देता नहीं निकाल!

दुखों का स्वागत

नदियाँ नीर भरें जलनिधि में
जो जल-राशि अघाए,
शुष्क, जल-रहित मरुस्थली को
दिनकर और तपाए।

हृष्ट-पुष्ट नित स्वस्थ रहे; कृश-
क्षीण रुग्न हो जाए,
लक्ष्मी के मंदिर में स्वागत
धनी-महाजन पाए।

अंधकार अंधों को मिलता,
उसे नयन जो पाए,
ज्योति मिले, यह नियम जगत का
सम समान को धाए।

प्यार पास जाए प्यारों के,
सुख, सुखियों पर छाए,
आशिष आशिषवानों पर, मुझ
दुखिया पर दुख आए!

आदर्श प्रेम

प्यार किसी को करना, लेकिन—
कहकर उसे बताना क्या?
अपने को अर्पण करना पर—
औरों को अपनाना क्या?

गुण का ग्राहक बनना, लेकिन—
गाकर उसे सुनाना क्या?
मन के कल्पित भावों से
औरों को भ्रम में लाना क्या?

ले लेना सुगंध सुमनों की,
तोड़ उन्हें मुरझाना क्या ?
प्रेम-हार पहनाना, लेकिन—
प्रेम-पाश फैलाना क्या ?

त्याग-अंक में पलें प्रेम-शिशु
उनमें स्वार्थ बताना क्या ?
देकर हृदय हृदय पाने की
आशा व्यर्थ लगाना क्या ?

तुमसे

नहीं चाहता तुलसी-दल बन
शीश तुम्हारे चढ़ पाऊँ,
नहीं, हार की कलियाँ बनकर
गले तुम्हारे पड़ जाऊँ।

नहीं, भुजाओं में रख तुमको
इन हाथों को करूँ पवित्र,
नहीं, हृदय के अंदर बंदी
कर के रखूँ तुम्हारा चित्र।

नहीं चाहता दिखलाने को
तव भक्तों का वेश धरूँ,
नहीं, सखा बन सदा तुम्हारे
दाएँ-बाएँ फिरा करूँ।

इच्छा केवल, रजकण में मिल
तव मंदिर के निकट पड़ूँ,
आते-जाते कभी तुम्हारे
श्रीचरणों से लिपट पड़ूँ।

मधुर स्मृति

याद मुझे है वह दिन पहले
जिस दिन तुझको प्यार किया,
तेरा स्वागत करने को जब
खोल हृदय का द्वार दिया।

मन मंदिर में तुझे बिठाकर
तेरा जब सत्कार किया,
झुक-झुक तेरे चरणों का जब
चुंबन बारंबार किया।

स्नेहमयी वह दृष्टि प्रथम ही
थी जिसने तुझको देखा,
याद नहीं है मुझे, तुझे
देखा पहले या प्यार किया !

हर्षित होकर क्यों न सराहूँ
बार-बार उस दिन के भाग,
जिस दिन तूने प्रेम हमारा
खुले हृदय स्वीकार किया !

दुखिया का प्यार

'प्रेम का यह अनुपम व्यवहार !—
पास न मेरे हैं वे आते,
मुझे न अपने पास बुलाते,
दूर-दूर से कहते हैं, करता हूँ तुझको प्यार !'

'आपदा के ऐसे आगार—
जहाँ किसी को छू हम देते,
घेर उसे दुख संकट लेते,
मिलकर तुझसे क्यों तुझ पर भी डालँ दुख का भार ?'

विरह के दुख सौ नहीं, हज़ार
सहा करूँ यदि जीवन भर मैं,
तुझे न दुखित बनाऊँ पर मैं,
'तू है सुखी'—यही तो मेरे जीवन का आधार।
प्रेम का ही तोड़ूँगा तार—
(चाहे मृत्यु भले ही आए)
ज्ञात मुझे यदि यह हो जाए—
दुखी बना सकता है तुझको इस दुखिया का प्यार'!

कलियों से

'अहे, मैंने कलियों के साथ,
जब मेरा चंचल बचपन था,
महा निर्दयी मेरा मन था,
अत्याचार अनेक किए थे,
कलियों को दुख दीर्घ दिए थे,
तोड़ इन्हें बागों से लाता,
छेद-छेद कर हार बनाता!
क्रूर कार्य यह कैसे करता,
सोच इसे हूँ आहें भरता।
कलियो, तुमसे क्षमा माँगते ये अपराधी हाथ।'

'अहे, वह मेरे प्रति उपकार !
कुछ दिन में कुम्हला ही जाती,
गिरकर भूमि-समाधि बनाती।
कौन जानता मेरा खिलना ?
कौन, नाज़ से डुलना-हिलना ?
कौन गोद में मुझको लेता ?
कौन प्रेम का परिचय देता ?
मुझे तोड़ की बड़ी भलाई,
काम किसी के तो कुछ आई;
बनी रही दो-चार घड़ी तो किसी गले का हार।'

'अहे, वह क्षणिक प्रेम का जोश !
सरस-सुगंधित थी तू जब तक,
बनी स्नेह-भाजन थी तब तक।
जहाँ तनिक-सी तू मुरझाई,
फेंक दी गई, दूर हटाई।
इसी प्रेम से क्या तेरा हो जाता है परितोष ?'

'बदलता पल-पल पर संसार,
हृदय विश्व के साथ बदलता,
प्रेम कहाँ फिर लहे अटलता ?

इससे केवल यही सोचकर,
लेती हूँ संतोष हृदय भर—
मुझको भी था किया किसी ने कभी हृदय से प्यार !'

विरह विषाद

चंद्र ! आते ही मृदुल प्रभात—
भू का रवि जब अंचल धरता,
किरण, कुसुम, कलरव से भरता
उसे, बना लेते क्यों अपना मलिन, हीन-द्युति गात ?

निशा रानी का विरह-विषाद ?
शोक प्रकट क्यों इतना करते,
छिपते जाते आहें भरते;
मिलन प्रणयिनी से तो निश्चित एक दिवस के बाद।

नहीं कुछ सुनते मेरी बात ?
देव, दुख-विरह क्षणिक तुम्हें जब,
इतना होता, बतलाओ अब,
धरें धैर्य्य मानव हम क्यों तब,
हो वियोग जिनका मिलना फिर दूर ! निकट ! अज्ञात !

मूक प्रेम

हमारी स्नेह-मूर्ति, कुछ बोल !
भावना के पुष्पों के हार,
गूँथ सुकुमार स्नेह के तार,
चढ़ाए मैंने तेरे द्वार,
भाए तुझे, न भाए—कह दे कुछ तो मुँह को खोल।

शास्त्र के सिद्ध, सत्य, अनमोल
वचन बतलाते युग प्राचीन
भक्त जब होता भक्ति-विलीन,
श्रवणकर उसके सविनय, दीन
वचन, मूक पाषाण मूर्तियाँ भी पड़ती थीं बोल !

आ गया, हाय, समय अब कौन ?
हैं सजीव जो मधुर बोलतीं,
बात-बात में अमृत घोलतीं,
सहज हृदय के भाव खोलतीं,
वे भी क्या भावना-भक्ति से हो जाएँगी मौन!

नयन में स्नेह भरा, मत मोड़
आँख, कर प्रकटित अपना भाव,
भयंकर मुझसे अधिक दुराव;
जानती अकथित प्रेम प्रभाव ?
प्रबल धार यह बाहर आती बाँध हृदय का तोड़ !

उपहार

जब लेकरके कुछ उपहार
मैं तेरे संमुख आता हूँ,
मन में कितना शरमाता हूँ !
अरे, कहाँ ये तुच्छ वस्तुएँ, कहाँ हमारा प्यार !

जग के वैभव का भंडार
एक स्वप्न में मैंने पाया,
चरणों में ला उसे चढ़ाया
तेरे, पर क्या हो पाया संतुष्ट हमारा प्यार !

जाग्रत में मैं निर्धन-दीन;
क्या देने को तुझको लाऊँ,
जिससे अपना प्यार-दिखाऊँ ?—
इसी सोच में हृदय हमारा निशि-दिन चिंतालीन !

इससे देखूँ एक बचाव—
अपना सब अस्तित्व मिटाऊँ,
तुझमें ही बिलकुल मिल जाऊँ,
रहे न हृदय जहाँ हो देने दिखलाने का भाव!

मेरा धर्म

धर्म हमारा पूछो, प्राण?—
किसे समझता मैं भगवान,
किसका उठकर करता ध्यान,
किसे हृदय में अपने देता सब से उच्चस्थान?

धर्म हमारा पूछो, प्राण?—
किसे समझता प्राणाधार,
किसकी करता भक्ति अपार,
समझूँ अंदर चमक रही है किसकी ज्योति महान?

धर्म हमारा पूछो, प्राण?—
ईश्वर को मैं नहीं जानता,
उसकी सत्ता नहीं मानता,
जिसे न देखा जाना कैसे उसको लेता मान?

जगती में मैं अब तक, प्राण !
केवल एक प्रेम पहचानूँ,
उसे हृदय का स्वामी मानूँ,
सब कहते भगवान प्रेम है—प्रेम हमें भगवान !

धर्म हमारा पूछो, प्राण ?—
कौन शक्ति मेरे तन देता,
कौन तरी जीवन की खेता,
कौन हमारा जीव ?—जान कर बनती हो अनजान ?

नयन करो मत नीचे, प्राण !
शक्ति तुम्हीं हो मुझको देती,
तुम्हीं तरी जीवन की खेती,
तुम्हीं जीव हो, प्राण, हमारी—और तुम्हीं भगवान !

'यह कैसे ?'—तुम पूछो, प्राण !
ईश-जीव में भेद नहीं है,
जहाँ जीव है ईश वहीं है,
'प्रेम' 'प्राण' तुम दोनों मेरी—शंकर वचन प्रमाण—

142764
814-H
746

धर्म हमारा पूछो, प्राण !
किसको रक्षक अपना कहता,
सदा आसरे जिसके रहता,
करा सरलता से लेने को ईश्वर से पहचान ?

सौंदर्य ने तेरे, प्राण ?
मुझे प्रेम का पाठ पढ़ाया,
मेरे ईश्वर तक पहुँचाया,
इससे कहूँ उसे मैं अपना ईश्वर-दूत सुजान।

धर्म हमारा पूछो, प्राण !
धर्म-ग्रंथ है कौन हमारा,
शंकाओं में कौन सहारा,
ज्ञान बढ़ाऊँ किससे ?—मानूँ किसके वाक्य प्रमाण ?

तेरे भोलेपन में, प्राण !
भरा ज्ञान का सारा सार,
सदा उसी का लूँ आधार,
करता उसका पाठ—वही है मेरा वेद—कुरान।

धर्म हमारा पूछो, प्राण?—
मेरा कौन पवित्र-स्थान,
शुचिता मुझको करे प्रदान,
जिसकी ओर तीर्थ-यात्री बन करता मैं प्रस्थान?

हर्ष हमारा मक्का, प्राण!
हम-तुमने मिल उसे बनाया,
प्रेम वहाँ पर बसने आया,
नहीं वासना, पाप वहाँ पर पाते वासस्थान।

धर्म हमारा पूछो, प्राण?
स्वर्ग कहाँ मैं अपना मानूँ?
प्रेम, न इसका उत्तर जानूँ,
परे भूमि से लोकों का है कुछ भी मुझे न ज्ञान।

अजर, अमर के कभी विचार
नहीं हृदय में मेरे आए,
पल भर का जीवन कट जाए,
इसी तरह बस तुझे गोद में लेकर करते प्यार!

संकोच

प्रियतम-द्वार खड़ी हूँ मौन।
यहाँ भला कब सोचा आना?
मेरा, उनका, दर्शन पाना!
खींच मुझे इतनी दूरी से लाया बरबस कौन?

बंद निर्दयी क्यों हैं द्वार!
'मेरे प्यारे'! 'प्रियतम'! 'प्रियवर'!
उन्हें पुकारूँ क्या मैं कहकर?
लेकर नाम? पूछती अपने मन से बारंबार!

मौन खड़ी; खटकाऊँ द्वार—
अरे, हाथ खाली ही आई!
देने को उपहार न लाई!
अरी, करेगी किससे प्रियतम की पूजा-सत्कार!

क्षमा कपट का हो व्यवहार—
यहीं कहीं बैठूँगी छिपकर,
आएँगे, देखूँगी पल-भर,
बस लौटूँगी उस पल का हृत्पट पर चित्र उतार।

प्रेम का आरंभ

प्रियतम, दिवस तुम्हें वह याद ?

नभ में निकल तरैयाँ-तारे
छिटक रहे थे प्यारे-प्यारे,
हरी डालियों का धर अंचल,
पवन हो रहा था कुछ चंचल,
कलियों पर झुक रहे कुसुम थे,
वृक्ष तले बैठे हम तुम थे,
प्रथम प्रेम का जिस दिन तुम पर छाया था उन्माद ?

प्रेम, प्रेम, उस दिन की याद
नहीं चाहता मुझे दिलाओ,
भूल उसे अब तुम भी जाओ।
वह दिन उनकी याद दिलाता,
जब न तुम्हारा मुझसे नाता।
भुला दिए मैंने दिन सारे,
बिना प्रेम जब रहा तुम्हारे।
तब की तो कल्पना हृदय में मेरे भरे विषाद !

यद्यपि वह दिन था सुकुमार,
पर न मुझे आकर्षित करता,
अब, न भावनाओं से भरता।
गिना दिनों से जाने हारा,
नहीं प्रेम अब रहा हमारा।
आदि, अनंत प्रेम का कैसा!
मुझको तो अब लगता ऐसा—
तुझे सदा से मैं करता था इसी तरह से प्यार!

आत्म संदेह

प्राण, बहुत मैं तुझसे दूर!
कभी हृदय से बसने वाली
तुझे समझता मूर्ति निराली;
हाय, सुदृढ़ विश्वास आज होता वह मुझसे दूर!

तुझपर आते कष्ट-कलाप,
पर न उन्हें मैं बिल्कुल जानूँ,
हृदयासीन तुझे पर मानूँ!
हो सकता है इससे भी क्या बढ़कर व्यर्थ प्रलाप!

इच्छा तो थी मेरी, प्राण !
काँटे से भी कष्ट तुझे हो,
तत्क्षण अनुभव वही मुझे हो,
बड़े-बड़े तेरे दुःखों का भी पर मुझे न ज्ञान !

इच्छा थी तेरा दुख-भार
मैं अपने ही ऊपर ले लूँ,
सुख अपने सब तुझको दे दूँ,
पर तेरा दुख अल्प हटाने में भी हूँ लाचार।

कहता तुझसे प्रेम अमान।
किंतु देख उसकी निर्बलता
हृदय हमारा भरे विकलता,
और कभी संदेह हमारे मन में उठे महान !

सुने प्रेमियों के आख्यान—
घाव एक तन में लग जाता
रक्त-धार दूसरा बहाता—
सच थे वे, थे या कवियों के बस काल्पनिक उड़ान ?

मौत प्रेम से जाती हार;
किसी एक को लेने आती,
उद्यत उसका प्रेमी पाती,
उसके बदले चलने को—चुप हो करती स्वीकार।

सत्य कथाओं के आधार
यदि थे वे तो क्यों उनका-सा
प्रेम नहीं मैं हूँ सकता पा?
चला गया क्या साथ उन्हीं के जग से सच्चा प्यार?

या मैं इतना मूर्ख गँवार,
नहीं समझ जो अब तक पाया
छली हृदय की छलमय माया,
ढोंग प्यार का करता था, कहता था—करता प्यार।

मुझको है संदेह अपार
प्रेम नहीं क्या तुम थे करते,
केवल उसका दम थे भरते;
हृदय, सशंक नयन से मैं अब देखूँ तेरा प्यार।

अब तक थे क्या करते स्वाँग
हृदय, प्रेम का, क्यों न बताते ?
धोखे में क्यों उसको लाते ?
भीख प्रेम की तुमसे आकर कौन रही थी माँग।

हृदय हमारी सुन फटकार
फूट-फूट कर हो तुम रोते,
कहने को तो हो कुछ होते,
पर क्यों रुक जाते ? मैं सुनने को तो हूँ तैयार।

निर्बल प्रेम—करूँ स्वीकार,
पर मेरा अपराध बताते
जो, या मुझपर दोष लगाते
जिसका, उसके कारण सारा अपराधी संसार।

नवल-सृष्टि के प्रथम प्रभात
प्रकट हुआ शिशु मानव जब था,
गोद खुशी की लेटा तब था,
पावन-प्रेम-दुग्ध-सिंचित था उसका कोमल गात।

किंतु अभागा मानव-बाल
मुख से हटा-हटाकर अंचल,
फेर-फेर अपने दृग चंचल,
लगा देखने रंग-बिरंगे जग का रूप विशाल।

बालक-वंचक, निर्दय, नीच
जग ने उसका चित्त लुभाया,
मूक नयन से उसे बुलाया,
कौतुक ही वह उतर गोद से गया विश्व के बीच।

विविध भावना के फल-फूल
खाकर उदर लगा निज भरने,
सकल दिशा में लगा विचरने;
गोद खुशी की और प्रेम का दूध गया वह भूल।

उस दिन से प्रतिदिन अविराम
लगा प्रेम-बल उसका घटने,
प्रेम-तेज मुख पर से हटने,
किंतु भयंकर इससे भी तो होना था परिणाम।

हाय, वासना-मद का पान
करके मानव बन मतवाला,
विषय-कीच से कर मुख काला,
लगा उपेक्षित मातृ-दुग्ध का करने अब अपमान!

सदा—हर्षिता मा को शोक
हो न सका, पर हुआ मलाल,
स-पय-प्रेम उड़कर तत्काल
चली गई बन गया हमारा शुष्क, शून्य यह लोक।

गई जहाँ मानव व्यवहार
में बच्चों का भोलापन था,
निश्छल मन था, निर्मल तन था,
सदा सरलता जिनके मुख का करती थी शृंगार।

गर्व, स्वार्थ का जहाँ अभाव
स्वच्छ-हृदयता दिखा रही थी,
जिसे नम्रता सिखा रही थी,
मधुर-वचन-जल में नहलाकर जल-सा नम्र स्वभाव।

जहाँ मनुष्यों के आचार
को न प्रलोभन ललचाता था,
और जहाँ पर सुंदरता का
निर्मल नयनों ही से होता था स्वागत—सत्कार।

संतति-हित विधि-विहित प्रपंच
भी न जहाँ मानव आचरता!
शिशु-इच्छा जब मन में करता
सुंदर शिशु नट-सा आ करता शोभित शशि का मंच।

अभिनय करता मन भर मोद,
फिर क्रीड़ा करते अभिराम,
उतर चंद्र-किरणों को थाम,
पल में लगता उछल-कूद करने दंपति की गोद।

वहाँ विषय को सुख-आनंद
नहीं स्वप्न में कोई भूल
कभी समझता; सब सुख-मूल
इस पृथ्वी पर समझा जाता, भाग्य हमारे मन्द!

योग्य प्रेम के वासस्थान
भला कहाँ मिलता इस भू पर ?
इसीलिए वह इसे छोड़कर
चला गया निज मधुरस्मृति का हमको छोड़ निशान !

मुझे प्रेम से अब भी प्यार।
मधुर वस्तु होती प्यारी, पर
मधुरस्मृति होती है प्रियतर;
विरले प्रेमी अब लेते हैं उसका ही आधार।

स्वप्न प्रेम के जो सुकुमार—
उन्हें देखना अब तुम छोड़ो,
पूर्व-भावना-निद्रा तोड़ो।
कहाँ लौट सकता है जग में पहले-का-सा प्यार !

अधःपतन मानव का देख
शंका ऐसा भय उपजाए—
कहीं न दिन ऐसा भी आए,
झटपट से जब मिट जाए स्नेहस्मृति की भी रेख !

जन्म दिवस

आ याद दिलाएँ जन्मदिवस की
हर्ष अनेक, अपार तुम्हें।

हो, और, मुबारक जन्म-दिवस
प्यारी कविते, सौ बार तुम्हें।

हम दीन बड़े, हम दूर पड़े,
क्या भेंट करें उपहार तुम्हें?

संतोष इसीसे कर लेना
सौ बार हमारा प्यार तुम्हें।

बाँसुरी

खूब जगे रे तेरे भाग!
कल करील वन में थी खोई,
अनदेखी, अनसुनी, बिगोई;
अधरों से लग आज कृष्ण के पीती है रस-राग!
धन्य-धन्य रे तेरे भाग!

अपने प्यारे-प्यारे हाथ
रखता है तेरे अधरों पर
कृष्ण, मुझे है हर्ष देखकर;
तेरा भाग सिहाता करता द्वेष न तेरे साथ!
तुझे मुबारक तेरा नाथ!
मुझे इसी में हर्ष महान,
तुम दोनों हिल-मिलकर गाओ,
प्रेम-राग से विश्व गुँजाओ,
दूर-दूर से सुना करूँ मैं भी वंशी की तान!
मुझे इसी में हर्ष अमान!

चित्र-समर्पण

आज हृदय में उठे विचार—
कलम छोड़ तूलिका उठाऊँ,
रंग एक मैं चित्र बनाऊँ,
उसे समर्पित करने तुझको आऊँ तेरे द्वार।
मेरा चित्र प्रथम सुकुमार
लगता है न तुझे अति रुचिकर?
नहीं बोलती क्यों तू सत्वर?
आँख मूँद, सिर उठा ला रही मन में कौन विचार?

चतुर चित्रकारों के संग
प्रेम, न मेरी तुलना करना,
मत लज्जा से मुझको भरना,
उनके आगे मेरा कोमल मान न करना भंग।

मेरी तुलना उनके संग
तब न चित्त में भय उपजाए,
देख उसे भी यदि तू पाए,
इन रंगों के बीच छिपा जो एक हृदय का रंग!

रिहाई

जेल-दंड का तेरे काल
हुआ समाप्त, बधाई देने
गए मित्र सब तुझको लेने,
नहीं तुझे मैं लेने आया, पर, ले स्वागत-माल!

मित्रों में अनुपस्थिति जान
मेरी, तुमने किया विचार
होगा, घटा हमारा प्यार
चित्र वियोग से! मित्र, कभी मत करना ऐसा ध्यान!

करता लज्जित बैठ विचार—
कर न सका, मैं काम तुम्हारा,
किया न यत्न तुम्हें छुटकारा
मिलता जिससे; यही बधाई देने का अधिकार!

गर्व सहित लेकर शुभ हार
तुम्हें पिन्हाने तब मैं आता,
तब मैं मन आनंद मनाता,
तुम्हें छुड़ाकर जब मैं लाता तोड़ जेल - दीवार।

हेम की मृत्यु

कहाँ गए तुम, प्यारे हेम!
अम्मा, बाबू जी को तजकर,
रोम - रोम में दुसह दुःख भर?
अपनी नन्हीं 'प्रेम' बहन का भूल गए क्या प्रेम?

जिससे जब मैं पूछूँ, 'ब्याह
बता करेगी अपना किससे?'
तुम्हें देखती कहती 'इससे'!
उसे छोड़कर चले गए! क्या उसपर बीती! आह!

सुना तुम्हारा कोमल गात
दिन भर के ज्वर में मुर्झाया !
कौन चोर था छिपकर आया,
तोड़ लिया तुमको जैसे ही हुई अँधेरी रात !

पाप हुए होंगे अज्ञात,
है मनुष्य जिससे दुख पाता;
नहीं समझ में पर यह आता—
तुम अबोध शिशुओं के ऊपर क्यों होते आघात !

जग का यदि कोई भगवान,
और न्याय का दिन आएगा,
क्षमा क्रूर का हो पाएगा
कभी नहीं, शिशुओं की हत्या का अपराध महान।

पत्रोत्तर

आज विजय पर अति सुख मान
पत्र एक तुमने लिख भेजा,
जिसमें तुमने मुझे सहेजा—
तुम्हें बनाकर मैं लिख भेजूँ एक विजय का गान।

जिसकी सब आशाएँ चूर्ण
होतीं रहीं सदा जीवन में,
विजयोल्लास कहाँ उस मन में,
विजय - वीचि सर में कैसी जो नीर - पराजय पूर्ण !

करना मुझको क्षमा प्रदान,
मित्र, तुम्हारी यदि आज्ञा यह
अनपालित मुझसे जाए रह,
कुछ न लिखा मैंने जो मेरे अंतर बीच उठा न।

शायद मैं लिख पाऊँ गीत,
पूर्ण विजय-विवरण जब पाऊँ,
जिसमें मैं इसपर पछताऊँ,
क्यों न मिल सकी, नायक, तुमको और चमकती जीत ?

नभचुंबी आशाएँ पोष,
रहा सदा जीवन में था मैं,
शायद सका न इससे पा मैं,
भूमि पर मिली तुच्छ सफलताओं में कुछ संतोष।

'हुआ' 'किया' 'पाया' से पात
किया न दृष्टि कभी जीवन पर,
आँखें रक्खीं उसपर दृढ़ कर,
हो न सका जो, पा न सका जो, कर न सका जो बात।

गुदगुदी

कोमल अंगों को छू, प्राण!
बारंबार पूछती हो तुम—
हँसी तुम्हारी हुई कहाँ गुम,
अब न हँसा करते हो क्यों तुम खिलते फूल समान?

तुम्हें दिलाता हूँ विश्वास—
मुझे न अपना दुःख सताता,
मुझे न अपना शोक दबाता,
दुखी नहीं हो सकता हूँ मैं तुम जब मेरे पास।

अब दुख का औ' सुख का भाग
अपना ही रह गया न मेरा,
जब से मैंने हृदय बिखेरा,
जब से करना सीखा सबसे दुनिया में अनुराग।

जग है नाटक दुःख-प्रधान—
दृढ़ यह मुझपर होता जाता,
सुख-प्रतीति हूँ खोता जाता,
उसे देखते हँसना उसके दुख का है अपमान।

आओ इस खिड़की के द्वार,
सुनो प्रभंजन है जो आता,
होता जग पर, भरकर लाता—
आह, विलाप, रुदन, कोलाहल, क्रंदन, हाहाकार!

होता है जग में अविराम—
पाता एक, हज़ारों खोते,
हँसता एक हज़ारों रोते,
एक-एक सुख का दुनिया में है लाखों दुख दाम!

देखा जाता जगत अतीव
एक रहे ऊपर—सौ गड़ते,
बसता एक, हज़ार उजड़ते,
लघु झोपड़ियाँ दबतीं लाखों एक महल की नीव!